पूज्य लालचंदभाई
जीतूभाई मोदी (सोनगढ़) के साथ तत्त्वचर्चा
तारीख - मई १९९५, प्रवचन AUD ०००१

मुमुक्षु: ३९२

पू. लालचंदभाई: (आत्मधर्म अंक) ३९२? ३९२ में ऐसा है ना कि **ज्ञानकला में अखंड का प्रतिभास होता है।** उसके ऊपर के आत्मधर्म में एक पहले (first) पेज में आया है कि आबालगोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आता है। तो १७-१८वीं गाथा में समयसार में कुंदकुंदाचार्य भगवान ने ऐसा कहा है कि प्रथम आत्मा को जानना और जाने हुए का श्रद्धान होता है। जानकर प्रतीति में लेना आत्मा को, जो जानने में आया वह ही मैं हूँ, फिर उसमें ठहरना। अर्थात् पहले जानना कहा है कि तुम्हें आदेश दिया है, पहले आत्मा को जानो। अर्थात् पहले में पहला जीवन में जो कर्तव्य होता है जीव का, मनुष्य मात्र का, जीव मात्र का कि पहले आत्मा को जानना है। पहले में पहला काम यह है। नौतत्त्व, छहद्रव्य ये कुछ बात ना करके, आत्मा को जानो - ऐसा कहा।

अब जब अमृतचंद्राचार्य ने उनकी अपेक्षा एक (stage) आगे आकर बात इसप्रकार से की कि आबालगोपाल सभी को जानने में आ रहा है। (कुंदकुंदाचार्य ने) कहा कि जानो। (अमृतचंद्राचार्य ने) कहा कि तुझे जानने में आ रहा है, उसका स्वीकार कर, ऐसे। इतनी स्पष्ट बात की है कि पहले आत्मा को जानो तब अमृतचंद्र आचार्य कहते हैं कि **आबालगोपाल सबके सदाकाल** आत्मा अनुभव में आता है। आहाहा! इसप्रकार उन्होंने...

अब उन्होंने जो शब्द लिखे हैं कि **आबालगोपाल सबके सदाकाल** अर्थात् एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव, कोई भी जीव हो, भव्य हो, अभव्य हो, कोई उसका भेद नहीं। परंतु सभी को आत्मा जानने में आता है, अनुभव में आता है अर्थात् कि जानने में आ रहा है। उसका कारण है कि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव ही स्वपरप्रकाशक है, स्व और पर दोनों का प्रतिभास होता है। स्व-पर दोनों को एक समय में जानता है ऐसा नहीं, दोनों का प्रतिभास होता है। ऐसा भले ही अज्ञानी है वह, उसे कहते हैं कि तुझे आत्मा जानने में आ रहा है। वह जो प्रतिभास होता है न? उसकी मुख्यता यहाँ रखी कि तुझे भले ही अभी अनुभव न हो, तू मिथ्यादृष्टि हो (भले)। परंतु तुझे जब पर जानने में आये और पर में जानकर तू प्रतीति करने लगता है, उस ही समय तेरे ज्ञान की पर्याय में स्वपरप्रकाशक स्वभाव होने के कारण (स्व-पर का) प्रतिभास हो रहा है। पर के प्रतिभास का तू आविर्भाव करता है। अब तू स्व के प्रतिभास का आविर्भाव कर कि 'जाननहार जानने में आता है' तो उस ही समय तुझे अनुभव हो जाएगा। तब पर का प्रतिभास रहेगा परंतु तिरोभाव हो जाएगा, लक्ष छूट जाएगा।

प्रतिभास दो का है, लक्ष एक का है। प्रतिभास दो का है सभी को, एकेन्द्रिय में भी। परंतु जो लक्ष करे आत्मा का तो उसे अनुभव होता है। तो उसका (पर का) प्रतिभास रह जाएगा लक्ष छूट जाएगा। लक्ष और प्रतिभास में बड़ा अंतर है। स्वपरप्रकाशक तो है परंतु जब आत्मा, आत्मा का लक्ष

करता है, तब पर का प्रतिभास तो रह जाता है। लोकालोक जानने में आ जाता है उसमें, ज्ञान की पर्याय में भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों की पर्यायों सहित उसमें प्रतिभास होता है। हों! इतनी स्वच्छता ज्ञान में है। परंतु उस वक्त, जब अंतर्मुख होकर इसको (स्व को) अनुभवता है आत्मा, लक्ष एक के ऊपर रहा, सामान्य। सामान्य को जब जानता है तब विशेष जानने में नहीं आता। तो विशेष जानने में नहीं आता तो विशेष के विषय कहाँ से जानने में आयेंगे, उस वक्त? प्रतिभास रह जाता है और लक्ष छूट जाता है, पर का। लक्ष छूटता है, प्रतिभास रह जाता है लोकालोक का। समझ गये? प्रतिभास टाला नहीं जा सकता।

जैसे दर्पण में मुख (चेहरा) जानने में आता है। सभी कहते हैं चेहरा दिखता है। इसमें कोई ज्ञानी कहते हैं, 'भाई! तुझे चेहरा नहीं दिखता तुझे दर्पण दिखता है' तब वह विचार करता है कि यह एक नई बात आई है। हम तो बिंदी लगाते हैं तब चेहरा दिखता है। तो कहते हैं 'तुझे चेहरा नहीं दिखता, तो दर्पण दिखता है ऐसा ले' अर्थात् चेहरे का प्रतिभास रह गया और प्रतिभास गौण हो गया, उसके लक्ष में से छूट गया।

मुमुक्षु: दर्पण लक्ष में आ गया।

पू. लालचंदभाई: दर्पण लक्ष में आ गया, उसका नाम अनुभूति है। प्रतिभास दो का, लक्ष एक का। उसमें वह ले लो पंचाध्यायी (मक्खनलालजी का अनुवाद)। मोटा पंचाध्यायी नया वाला है न वह? हाँ! वह ले लो। उसमें ५५८ श्लोक निकालो, ५५८।

मुमुक्षु: हाँ जी है। रेखांकित (underline) किया हुआ है, बहुत जरूरी है। **ज्ञान अर्थ विकल्पात्मक होता है।**

पू. लालचंदभाई: हाँ।

मुमुक्षु: **अर्थात् ज्ञान स्व-पर पदार्थ को विषय करता है इसलिए ज्ञान सामान्य की अपेक्षा से ज्ञान एक ही है, क्योंकि अर्थ विकल्पपना सभी ज्ञान में है परंतु...**

पू. लालचंदभाई: अर्थात् समस्त प्रकार के ज्ञान में स्व-पर का प्रतिभास है।

मुमुक्षु: है। **परंतु विशेष-विशेष विषयों की अपेक्षा से उसी ज्ञान के दो भेद हो जाते हैं। (१) सम्यग्ज्ञान (२) मिथ्याज्ञान।**

पू. लालचंदभाई: लक्ष पलट जाता है। प्रतिभास दो का, लक्ष एक का हो जाता है। लक्ष के ऊपर ही संपूर्ण बंध-मोक्ष का आधार है। स्वपरप्रकाशक बंध-मोक्ष का कारण नहीं हैं। उसका लक्ष कहाँ है?

मुमुक्षु: पर के ऊपर है।

पू. लालचंदभाई: तो बंधता है। स्व के ऊपर (तो छूटता है)। लोकालोक का प्रतिभास छूटनेवाला नहीं है। दर्पण के दृष्टांत से, मुझे दर्पण को देखना है परंतु (उसमें) मेरा चेहरा न दिखे, ऐसा किसी भी दिन नहीं बनता। चेहरे का प्रतिभास तो रहेगा (परंतु) वहाँ से लक्ष छूट जाएगा। आज तक कहता था मेरा चेहरा दिखता है, चेहरा दिखता है। चेहरा मुझे दिखता ही नहीं मुझे (तो) दर्पण दिखता है, तब काम होता है ऐसा है। हों! यह रहस्य!

मुमुक्षु: प्रतिभास और लक्ष में जो...

पू. लालचंदभाई: यह स्व-पर का प्रतिभास, लक्ष एक का, प्रतिभास दो का। लक्ष एक का, प्रतिभास दो का। अनादि-अनंत प्रतिभास दो का ही होता है।

मुमुक्षु: इस प्रकार केवली को लोकालोक का प्रतिभास है परंतु लक्ष एक का ही है।

पू. लालचंदभाई: एक का ही, आत्मा का ही है, उनका लोकालोक की तरफ लक्ष ही नहीं है। चौथे गुणस्थान में लक्ष गया, प्रतिभास रह गया और लक्ष अंदर में आ गया। प्रतिभास पर का रह गया, लक्ष छूट जाता है।

इस दर्पण के दृष्टांत से, (समयसार) जयसेन आचार्य का ले लो तो, संस्कृत उसमें है। जयसेन आचार्य की टीका जो है ना? उसमें है। लिखा हुआ, 'जयसेनाचार्य' शब्द लिखे होंगे। समयसार के आगे, वह ही होगा, लाल-लाल, केसरी-केसरी-केसरी, उस तरफ। केसरी है ना? उसमें यह निकालो २१२ गाथा है। २१२ निर्जरा अधिकार है। २१२, २१३, २१४ रेखांकित की हैं क्या? यह लो।

मुमुक्षु: २१० और २१२ रेखांकित की हुई हैं। **जैसे दर्पण में आए हुए प्रतिबिंब के समान केवल आहार में ग्रहण करने के योग्य वस्तु का उस वस्तु के रूप से ज्ञायक ही होता है। किन्तु रागरूप से उसका ग्रहण करनेवाला नहीं होता है।** यह ऐसा किसलिए दृष्टांत दिया?

पू. लालचंदभाई: अर्थात् ऐसा कहा है कि जैसे दर्पण में प्रतिभास होता है तो उस दर्पण को जानने से वह जानने में आ जाता है। वैसे ही, **दर्पण में आये हुये प्रतिबिंब के समान**, (प्रतिबिंब) समान आहार हमें जानने में आता है, आहार के सन्मुख हमारा उपयोग नहीं है। जैसे दर्पण (के दृष्टांत) में मुख के सन्मुख उपयोग नहीं है, वैसे आहार के सन्मुख (उपयोग) नहीं है परंतु आहार हमें जानने में आता है। परंतु हमारा लक्ष कहाँ है? ज्ञायक के ऊपर।

मुमुक्षु: **रागरूप से उसका ग्रहण करनेवाला नहीं होता है। ज्ञायक ही होता है।**

पू. लालचंदभाई: हाँ, **दर्पण में आए हुए**, चार गाथायें हैं, चार गाथायें - आहार, पानी, पुण्य और पाप।

मुमुक्षु: यह रहा, है। स्पष्ट यह भाई! **दर्पण में आए हुए प्रतिबिंब के समान उसका ज्ञायक ही होता है।**

पू. लालचंदभाई: अर्थात् कि उसका जाननहार ही रहता है। आहार और पानी, पुण्य और पाप - चार गाथायें हैं। उनका जाननहार रहता है, परंतु उनको जानता है या आत्मा को जानता है?

मुमुक्षु: आत्मा को जानता है।

पू. लालचंदभाई: बस! ऐसा है। आत्मा को जानने से उसका निमित्तपना है ना? तो उपचार से उसे जानता है, ऐसा कहा। बाकी लक्ष पुण्य-पाप के ऊपर नहीं होता, आहार के ऊपर नहीं होता लक्ष। मुनिराज का लक्ष आहार पर है ही नहीं, और लक्ष पलटे तो ज्ञान रहता नहीं।

मुमुक्षु: हाँ! तो-तो फिर वह तो मिथ्याज्ञान में चला गया।

पू. लालचंदभाई: बस! मिथ्याज्ञान।

मुमुक्षु: यहाँ लिखा है सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान दो प्रकार हैं।

पू. लालचंदभाई: हाँ! दो, दो थे। मिथ्याज्ञान में जाते हैं।

मुमुक्षु: लक्ष चूक गया तो मिथ्याज्ञान और लक्ष इस तरफ पलट जाए तो... (सम्यग्ज्ञान)।

पू. लालचंदभाई: पूरा लक्ष के ऊपर आधार है। और गुरुदेव ने तुम्हें तो एक-एक व्याख्यान में लक्ष की प्रधानता की, कि तू राग का लक्ष छोड़कर आत्मा का लक्ष कर। लक्ष की प्रधानता से है, पूरी बात है। स्व-पर दोनों जानने में आते हैं, कौन मना करता है? परंतु लक्ष तेरा पर के ऊपर है। तू कहता है कि स्वपरप्रकाशक, परंतु स्वप्रकाशक तेरे पास आया कहाँ से?

मुमुक्षु: पर का किसलिए आग्रह रखता है? स्व तो है नहीं तेरे पास।

पू. लालचंदभाई: (स्व तो) है नहीं तेरे पास।

मुमुक्षु: सच्ची बात है!

पू. लालचंदभाई: यह अनुभव की कला है भाई!

मुमुक्षु: असल में तो आश्चर्य होता है कि स्वपरप्रकाशक का आग्रह करता है तो उस स्व की तो तुझे खटक नहीं है।

पू. लालचंदभाई: स्व का तो बोलता ही नहीं है।

मुमुक्षु: परप्रकाशक में तुझे खटक क्यों होती है? किसी के घर पर क्या है उससे तुझे क्यों बेचैनी होती है? तेरे घर में क्या है वह तो तुझे देखना नहीं है।

पू. लालचंदभाई: तेरे ज्ञान में तेरा आत्मा जानने में आता है। स्वपरप्रकाशक में स्व जानने में आता है। तब स्वपरप्रकाशक कहा जाता है ना? स्व जानने में न आये तो स्वपरप्रकाशक नहीं कहा जाता। स्व तो जानने में आता है **आबालगोपाल सबके**, उसका तो तू कुछ बोलता नहीं (है) इसलिए अनुभव नहीं होता।

मुमुक्षु: हमारी बहुत बार चर्चा होती है कि यह स्वपरप्रकाशक - पर को जानता नहीं, ऐसा तुझे मुश्किल क्यों पड़ता है? स्व को जानता नहीं उसमें तुझे मुश्किल क्यों नहीं पड़ती?

पू. लालचंदभाई: वहाँ तो वह बोलता ही नहीं है। बोलता ही नहीं कि पहला शब्द स्व है, बाद में पर है। अनुक्रम में भी स्व और पर दोनों आये हैं। **दर्पण में आए हुए प्रतिबिंब के समान**, चार गाथायें हैं, संस्कृत में है यह।

मुमुक्षु: पुण्य है, फिर पाप है, फिर आहार है।

पू. लालचंदभाई: इसीलिए डायरेक्ट (direct) वह पर को नहीं जानता, इनडायरेक्ट (indirect) पर को जानता है। समझ गये?

मुमुक्षु: हाँ! ये गुरुदेव लेते थे न? नेकस्ट स्टेप में (next step).

पू. लालचंदभाई: हाँ, बस! कि पर संबंधित अपने ज्ञान को जानता है, पर को नहीं। अपने ज्ञान को जानता है। अतः वह तो स्वप्रकाशक में आ गया न?

मुमुक्षु: आ गया। स्व को अपने ज्ञान को जानता है, पर को नहीं जानता, उसमें स्व में आ गया।

पू. लालचंदभाई: ऐसा है।

मुमुक्षु: बहुत मूलभूत वस्तु है पूरी।

पू. लालचंदभाई: यह मूल है हों, मूल है। उसका काम हो जायेगा यदि ध्यान रखे तो, इतना

पर्याप्त है। अपूर्व बात है! (पर के प्रतिभास का) आविर्भाव करता है और स्व के प्रतिभास का तिरोभाव करता है। यह पंद्रहवीं गाथा समयसार की है, आविर्भाव-तिरोभाव। समझ गये? सभी पर का आविर्भाव कर-कर के, लक्ष करके और मोह करते हैं, ममता करते हैं, राग-द्वेष करके मरते हैं। आहाहा!

पर का प्रतिभास रह जाता है। समझ गये? प्रतिभास छूटता नहीं किसी काल में, इतनी स्वच्छता है यहाँ तो। परंतु लक्ष छूट जाता है, (पर का) लक्ष छूट जाता है।

मुमुक्षु: प्रतिभास तो दोनों का होना ही है। वह तो स्वभाव की स्वच्छता...

पू. लालचंदभाई: हो! निगोदिया को होता है और केवली को होगा और सिद्ध में भी है। सिद्ध परमात्मा हैं न? उनके ज्ञान में भी स्व-पर का प्रतिभास तो है। वह तो मूल स्वभाव है।

अर्थ विकल्पो ज्ञानं प्रमाणम् यह जो ५५८ तुम्हें बताया न वह (पंचाध्यायी पूर्वार्ध) ५४१वाँ है, पढ़ो। प्रवचनसार का आधार स्वयं ने दिया है। वह ही, वो ५४१। तुम्हें ५५८ बताया, उसके अनुसंधान में ५४१ है।

मुमुक्षु: हाँ है। प्रवचनसार गाथा १२४। **जैसे प्रमाण का लक्षण कहने में आता है कि अर्थ विकल्प ज्ञानरूप प्रमाण होता है, यहाँ अर्थ का तात्पर्य ज्ञान और पर पदार्थों से है।**

पू. लालचंदभाई: **ज्ञान** अर्थात् स्व (**अर्थ** अर्थात्) स्व और पर।

मुमुक्षु: **विकल्प अर्थात् ज्ञान का उस आकाररूप होना वह है।**

पू. लालचंदभाई: **आकार रूप,** प्रतिभास बस!

मुमुक्षु: **स्व पर का ज्ञान होना वह ही प्रमाण है।**

पू. लालचंदभाई: अब प्रमाण ज्ञान, पर्याय का प्रमाण जो स्वपरप्रकाशक है (वो) निश्चय नहीं है, (वो तो) प्रमाण का विषय है। उस प्रमाण में से तुम व्यवहार का निषेध करो तो हाथ में आयेगा निश्चय; पर को मैं जानता ही नहीं, जाननहार जानने में आता है।

मुमुक्षु: यह हमने सूत्र लिखा है 'जाननहार जानने में आता है'।

पू. लालचंदभाई: वह यह है। पर का निषेध करना पड़ेगा। प्रमाण में व्यवहार का निषेध करो तो निश्चय हाथ में आता है - ऐसा यह ऊपर लिखा है, ऊपर है। कोई निषेध करने की हिम्मत किसी को होती नहीं है। लोकालोक को केवली जानते हैं और हम पर को नहीं जानते? ऐसा दिखता है और तुम कहते हो कि जानता नहीं? भाई! उसमें ज्ञान का निषेध नहीं है, इन्द्रियज्ञान का निषेध है, अज्ञान का निषेध है। आविर्भाव जो पर का होता है उसका तिरोभाव हो जाएगा और इसका (स्व का) आविर्भाव होगा। तुझे अनुभव होगा भाई।

मुमुक्षु: और इन्द्रियज्ञान का तो गुरुदेव ने, (समयसार की) ३१वीं गाथा जब आती थी (तब) बहुत निषेध किया है।

पू. लालचंदभाई: बहुत, बहुत, बहुत निषेध किया है। उसमें सवाल ही नहीं है। और उन्होंने ऐसा कहा कि आँख का उघाड़ पर को जानता है, कान का उघाड़ शब्द को जानता है, वहाँ तक बात की है।

मुमुक्षु: जी हाँ अंतिम (समयसार की ३७३-३८२) गाथाओं में।

पू. लालचंदभाई: हाँ, अर्थात् आँख का उघाड़ जानता है इसलिए ज्ञान का उघाड़ नहीं जानता उसे, ज्ञान का उघाड़ आत्मा को जानता है।

मुमुक्षु: जहाँ इन्द्रिय की बात आयी वहाँ यह ज्ञान नहीं है।

पू. लालचंदभाई: एक 'इन्द्रियज्ञान ज्ञान नहीं' वह पुस्तक है, वह तुम्हें दिखाता हूँ। वो पीछे की तरफ से देखो, पीछे से, यहाँ पर। यह मोस्ट इम्पोर्टन्ट (most important) है।

मुमुक्षु: **(इन्द्रियज्ञान) बंध के हेतुरूप होने से।**

पू. लालचंदभाई: वह नहीं है।

मुमुक्षु: यह नीचे वाला? **जीव का जितना विषयों का (इन्द्रियजन्य) ज्ञान है वह सभी पौद्गलिक मानने में आया है।**

पू. लालचंदभाई: वह नहीं, यह।

मुमुक्षु: **भिन्न-भिन्न ज्ञानों से उपलब्ध होने के कारण शरीर और आत्मा का सदा परस्पर भेद है। शरीर इन्द्रियों से - इन्द्रियज्ञान से - जानने में आता है और आत्मा असल में स्वसंवेदन ज्ञान से जानने में आता है।**

पू. लालचंदभाई: दोनों विषय अलग हैं, उनको जाननेवाले दो ज्ञान अलग हैं। इस अलगपने का कारण दिया कि इन्द्रियज्ञान से पर ज्ञात होता है और आत्मज्ञान से आत्मा ज्ञात होता है। इन्द्रियज्ञान आत्मा को नहीं जानता और आत्मज्ञान पर को नहीं जानता, ऐसा इसमें आया है।

मुमुक्षु: आत्मा असल में ज्ञान से जानने में आता है और इन्द्रियज्ञान वह शरीर को जानता है। दो बातें ही एकदम अलग हैं।

पू. लालचंदभाई: पर को जाननेवाला ज्ञान इन्द्रियज्ञान है और स्व को जाननेवाला ज्ञान अतीन्द्रियज्ञान, आत्मज्ञान है। यह योगसार में (अमितगति आचार्य, चूलिका अधिकार, गाथा ४८) है।

मुमुक्षु: योगसार अमितगति आचार्य का। यह दूसरा बोल वह वाला है गुरुदेव का, आत्मधर्म में से कि **आत्मा असल में पर को नहीं जानता तो फिर पर को जानने के लिए उपयोग रखना, वह बात ही कहाँ रही?**

पू. लालचंदभाई: कहाँ रही? ये उनके शब्द हैं।

मुमुक्षु: गुरुदेव के शब्द हैं, (आत्मधर्म) मार्च १९८१। **स्वयं अपने को जानता है, ऐसा कहना वह भी भेद होने से व्यवहार है,**

पू. लालचंदभाई: **व्यवहार है,**

मुमुक्षु: **असल में ज्ञायक वह ज्ञायक ही है वह निश्चय है, जैनदर्शन बहुत सूक्ष्म!** यह मुझे पता है आपने इसके हेडिंग में भी पढ़ा था एक बार, यहाँ प्रवचन में।

पू. लालचंदभाई: सच्ची बात है।

मुमुक्षु: बहुत सुंदर! परंतु आपने गुरुदेव की बातें खूब इसी तरह ...

पू. लालचंदभाई: इस प्रकार खींचकर, निकालकर मूल मुद्दे की बातें ...

मुमुक्षु: गुरुदेव जानने के विषय को लेते थे, पर के ..., परंतु उनका, गाथाओं का अनुसंधान होता

हो, तब। आपने एक साथ ले लिया।

पू. लालचंदभाई: लगातार बस, लगातार। लोगों का ध्यान खिंचता है, अभ्यासियों का।

मुमुक्षु: जब निहालभाई का बाहर आया तो गुरुदेव कहते थे कि 'हम तो यह बात कहते थे'।

पू. लालचंदभाई: कहते थे।

मुमुक्षु: परंतु गुरुदेव हमें दूसरा-दूसरा गुड लगाकर देते हैं न, दवा? इस प्रकार।

पू. लालचंदभाई: गुड, गुड लगाकर, इस प्रकार से।

मुमुक्षु: सारे समझदार इशारे को समझ जायें। निहालभाई का लगातार।

पू. लालचंदभाई: लगातार।

मुमुक्षु: आपने यह जो पर को जानता नहीं, 'पर को जानता नहीं' (कहा), जरा कुछ ध्यान केंद्रित हुआ, ख्याल आया, ओहो बात कुछ अलग ही है!

पू. लालचंदभाई: चमके तो अच्छा! जैसे कुम्हार से घड़ा नहीं होता, वह चमक गया, वैसे (ही) मैंने कहा पर को जानता ही नहीं, जाननहार जानने में आता है, सभी को। आबालगोपाल सभी को जानने में आता है। ठीक! उसमें स्वपरप्रकाशक नहीं लिया, **आबालगोपाल सबके** स्व-पर जानने में आता है ऐसा नहीं लिया।

मुमुक्षु: स्व ही ज्ञात होता है।

पू. लालचंदभाई: लिया है या नहीं?

मुमुक्षु: स्पष्ट, स्पष्ट लिया है। स्वयं, अपने को जानने में आता है, **आबालगोपाल सबके सदाकाल** जानने में आता है। पर जानने में आयेगा उसकी बात ही नहीं ली है।

पू. लालचंदभाई: ऐसी बात ही नहीं है। स्वपरप्रकाशक लिया ही नहीं। ऐसा है भी नहीं। पर से संबंधित अपना ज्ञान ज्ञात होता है वह तो स्वप्रकाशक हुआ।

मुमुक्षु: वह तो अपना ज्ञान हुआ।

पू. लालचंदभाई: अपना ज्ञान हुआ। उसका कहाँ हुआ?

मुमुक्षु: बहुत सुंदर! और कुंदकुंदाचार्य ने 'अपने को जान' ऐसा कहा, पहले में पहले जानना।

पू. लालचंदभाई: आत्मा को जान।

मुमुक्षु: तो अमृतचंद्राचार्य ने कितना अच्छा कर दिया उसका कि जानने के लिए तुझे कुछ दूसरी मेहनत नहीं करनी है, जानने में आ रहा है!

पू. लालचंदभाई: जानने में आ रहा है, तू हाँ कर। तुझे जानने में आ रहा है।

मुमुक्षु: बस! अर्थात् उसमें जानने में मुझे क्या करना है, वह एक उपाधि है।

पू. लालचंदभाई: किस प्रकार जानना? किस प्रकार जानना? यहाँ तो कहते हैं तुझे जानने में आ रहा है, स्वीकार कर ले, हाँ कर ले, हाँ कर तो हालत होगी। यह (पर) मुझे जानने में नहीं आता, जाननहार जानने में आता है।

मुमुक्षु: बहुत सुंदर! यह गाथा भी गजब की। ऐसे कुंदकुंदाचार्य और अमृतचंद्राचार्य ने अमुक-अमुक गाथाओं में ऐसे बहुत ही विशिष्ट रूप (से दर्शाया है)। नियमसार की अमुक गाथाओं में भी ऐसे।

पू. लालचंदभाई: समयसार की, समयसार ले लो। समयसार की ९२-९३ गाथा निकालो। समयसार की ९२ गाथा में कुंदकुंद भगवान की गाथा का अर्थ पढ़ो। मूल गाथा का अर्थ।

मुमुक्षु: **जो पर को अपनेरूप करता है और अपने को भी पररूप करता है वह अज्ञानमय जीव कर्मों का कर्ता होता है।**

पू. लालचंदभाई: **कर्मों का कर्ता होता है** ऐसा कहा है। अमृतचंद्राचार्य लिखते हैं कि **कर्मों का कर्ता प्रतिभासित होता है।** बड़ा अंतर है, बड़ा अंतर है। उसमें है - कर्ता होता है तो कहते हैं कि असल में जो मूल द्रव्य है वह कर्ता (होता नहीं), वह तो अकर्ता रहता है। समझ गये? परंतु पर्याय की प्रधानता से कर्ता लिखा है। समझ गये? वह तो अकर्ता रहता है त्रिकाल। तब उसकी स्पष्टता बताई, कर्ता होता नहीं राग का, परंतु मैं राग को करता हूँ ऐसा उसे भासित होता है, वह भासित होता है इसीलिए अज्ञान है। अज्ञान है इसलिए (भासित होता है) ऐसा नहीं।

मुमुक्षु: अच्छा, अर्थात् भासित होता है इसलिए अज्ञान है।

पू. लालचंदभाई: कर्ता हो गया, अज्ञान हो गया। अज्ञानी भी राग को नहीं करता परंतु राग होता है उस वक्त दृष्टि राग के ऊपर है इसीलिए, 'राग को मैं कर्ता हूँ' - ऐसा उसे भासित होता है।

मुमुक्षु: भासित होता है इसलिए अज्ञान है।

पू. लालचंदभाई: जो वह कर्ता हो गया हो तो अकर्ता हो नहीं सकता, इसलिए भासित होता है। वह प्रतिभास अज्ञान है। ९२-९३ दोनों में है यह।

मुमुक्षु: **स्वयं ज्ञानमय होता हुआ, कर्मों का अकर्ता प्रतिभासित होता है।**

पू. लालचंदभाई: **अकर्ता प्रतिभासित होता है,** अकर्ता हुआ नहीं है, अकर्ता तो है ही। ओहो! मैं अनादिकाल से तो अकर्ता था, मेरी भूल थी हो!

मुमुक्षु: बस! इतना प्रतिभास हुआ, ज्ञानी हो गया।

पू. लालचंदभाई: ज्ञानी हो गया।

मुमुक्षु: बहुत सरल हो गया काम।

पू. लालचंदभाई: सरल ही है। यह तुझे देता हूँ यह माल, निचोड़, ५० वर्ष का निचोड़ मैं तुझे कहता हूँ।

मुमुक्षु: आपने बहुत, वैसे भी करुणा बहुत ही है, इसलिए कहा है। परंतु बहुत सुंदर आपने (कहा है)!

पू. लालचंदभाई: अभ्यासियों को बहुत अमृत जैसा लगता है।

मुमुक्षु: ठीक बात है। बहुत अच्छा है! स्वयं अकर्ता ही है।

पू. लालचंदभाई: हैं ही अनादि-अनंत सभी, परंतु कर्ता हूँ ऐसा भासित होना, यह अज्ञान है। जैसे पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में चौदहवीं गाथा में (कहा) कि राग ..., कर्मकृत राग से असंयुक्त अर्थात् रहित होते हुए भी अज्ञानी को ऐसा लगता है कि 'सहित हूँ' इसलिए संसार खड़ा होता है। है तो रहित ही, मानता है (कि) सहित हूँ। (शास्त्र में) पीछे है।

मुमुक्षु: **इस प्रकार यह आत्मा कर्मकृत रागादि और शरीरादि**

पू. लालचंदभाई: और जीवकृत नहीं पहले लिखा।

मुमुक्षु: कर्मकृत। **कर्मकृत रागादि और शरीरादि भावों से असंयुक्त होते हुए भी अज्ञानियों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है।** आज प्रतिभास की बात बहुत सुंदर आपने की है।

पू. लालचंदभाई: प्रतिभास के ऊपर पूरा आधार है। प्रतिभास पर संपूर्ण (आधार है)। अमृतचंद्राचार्य की शैली प्रतिभास की बहुत है।

मुमुक्षु: बहुत-बहुत। प्रतिभासित होता है, प्रतिभासित होता है।

पू. लालचंदभाई: अर्थात् कि है नहीं, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु: लेकिन प्रतिभासित होता है तुझे।

मुमुक्षु: प्रश्न रहता था कि ऐसा दृष्टि के विषय का जोर रहता होगा तो काल कैसे जाता होगा?

पू. लालचंदभाई: दृष्टि के विषय का जोर भले ही रहता हो, परंतु, दृष्टि के विषय की अधिकता तो आ गई, ऐसा जीव हम लेते हैं। (टेप Tape) उतरती है?

दृष्टि के विषय की तरफ तो आ गया है, परंतु दृष्टि का जो विषय है ..., जो अनुभव का विषय है वह ही दृष्टि का विषय है। परंतु उसे जो अपूर्व निर्णय आना चाहिये वह नहीं आया अभी। वह एक अपूर्व निर्णय अनुभव से पहले, सम्यग्दर्शन से पहले, आता है।

मुमुक्षु: उसके लिए?

पू. लालचंदभाई: उसके लिए दूसरी कोई बात नहीं, यह जो दृष्टि का विषय आता है, उसका घोलन हुआ करता है। उसकी दूसरी कोई प्रोसेस (process) नहीं है। परंतु एक बात निश्चित है कि, दृष्टि के विषय का भी उसको यथार्थरूप से निर्णय नहीं होता, उसका एक कारण रह जाता है कि, व्यवहार का जितने प्रमाण में निषेध करना चाहिए उतने प्रमाण में वह करता नहीं है। कहीं तो वह व्यवहार के पक्ष में ढीला है, निषेध करने के लिए। जितना बल आना चाहिए निषेध का, जहाँ जितना बल (आना चाहिए) उतना आए तब यह निश्चय का पक्ष आएगा। पक्षातिक्रांत बाद में होगा। पहले पक्ष आता है। भले ही दृष्टि के विषय का वह घोलन करता है, परंतु अभी पक्ष में नहीं आया। अनुभव से पहले की बात है।

मुमुक्षु: हाँ जी! हाँ जी! अनुभव से पहले की बात है।

पू. लालचंदभाई: वह पंचाध्यायीकार ने लिया है, समझ गए? कि पहले पक्ष आता है।

मुमुक्षु: अर्थात् व्यवहार का निषेध नहीं आता है, जितना चाहिए उतना, तो उसमें प्रमाण की बात, प्रमाण का निषेध आना चाहिए?

पू. लालचंदभाई: नहीं। अर्थात् प्रमाण में ही दो अंश हैं - निश्चयनय का विषय और व्यवहारनय का विषय, दोनों प्रमाण में आते हैं। अर्थात् व्यवहारनय के विषय का जितनी मात्रा में (निषेध का) जोर आना चाहिए, उतनी मात्रा में नहीं आता, इसलिए प्रमाण का पक्ष रह गया।

मुमुक्षु: इसीलिए जो गुरुदेव ऐसे लेते हैं कि प्रमाण के लोभ में...

पू. लालचंदभाई: यह वह। यह वह+ कि द्रव्य भी है और पर्याय भी है। पर्याय दिखती है उसे अभी। पर्याय द्रव्य में नहीं है ऐसा द्रव्य दिखता नहीं। ऐसा एक द्रव्य दिख जाए कि जिसमें पर्याय नहीं

है। पर्याय है, वो फर्स्ट स्टेज में आ गया। निर्णयवाला भी पर्याय का अस्तित्व है - वह स्वीकार करता है; परंतु पर्याय मेरे में नहीं हैं ऐसा मैं हूँ। (प्रमाण का पक्षवाला को) ऐसा यथार्थ निर्णय, मानसिक निर्णय नहीं आता। मानसिक निर्णय है, मन के द्वारा भाँप लेता है यह। समझ गए? ऐसा एक अपूर्व निर्णय आता है, अनुभव से पहले। किसी को अंतर्मुहूर्त में अनुभव होता है, किसी को काल लगता है, देर लगती है।

मुमुक्षु: परंतु प्रोसेस तो यह है।

पू. लालचंदभाई: प्रोसेस यह, दूसरी कोई नहीं। जितनी मात्रा में व्यवहार का निषेध उतनी मात्रा में निश्चय का पक्ष। सौ प्रतिशत निषेध तो सौ प्रतिशत पक्ष आएगा और पक्ष आया क्या और पक्षातिक्रांत हुआ क्या! पक्ष आना चाहिए वह पक्ष नहीं आया है। सौ प्रतिशत आना चाहिए।

मुमुक्षु: सौ प्रतिशत आये तो वह पक्षातिक्रांत हो जाये।

पू. लालचंदभाई: पक्षातिक्रांत हो जाता है।

मुमुक्षु: इसीलिए गुरुदेव जो लेते थे यह परमात्मप्रकाश की ६८वीं गाथा में कि जिनवर-देव उसे जिन कहते हैं जो उत्पाद-व्यय से रहित जीव है, उसको जीव कहते हैं।

पू. लालचंदभाई: हाँ! उसे जीव कहते हैं अर्थात् ध्रुव का पक्ष आना चाहिए, ये यह। उत्पाद-व्यय कहकर तो कमाल कर दिया। प्रमत्त-अप्रमत्त से आगे, अगुरुलघु गुण की पर्याय से भी आगे। प्रमत्त-अप्रमत्त से रहित अर्थात् कुछ बाकी रहता नहीं, समाप्त! उपयोग लक्षण उसमें आ गया - उत्पाद-व्यय। उपयोग लक्षण है न? वह पर्याय का लक्षण है। जीव का लक्षण परमपारिणामिक है। उत्पाद-व्यय में आ गया या नहीं, उपयोग लक्षण? क्योंकि क्रिया होती है उपयोग में। उससे रहित (भगवान आत्मा) है। उपयोग से भी रहित है।

उपयोग से अनन्य है वह भी आएगा। वह ज्ञेय-प्रधान, ज्ञान-प्रधान कथन में आया ही करेगा, वह तो आता है ज्ञेय। कथन पद्धति दो हैं।

मुमुक्षु: यह तो अपनी मूलभूत वस्तु तक पहुँचना हो उसे।

पू. लालचंदभाई: पहुँचना हो उसके लिए सारी बात तुम्हें कहता हूँ। उपयोग लक्षण है, आत्मा उसमें ज्ञात होता है, उपयोग में उपयोग है, वह सब हमें खबर है।

मुमुक्षु: बात पक्षातिक्रांत होने के लिए की है इसलिए आपने कहा।

पू. लालचंदभाई: (पक्षातिक्रांत) होने के लिए। किसी भी पर्याय का पक्ष नहीं रहना चाहिए।

मुमुक्षु: आपने कहा उस प्रोसेस में रहता है परंतु उसको ऐसे गहरे-गहरे रहा करता है कि मुझे सम्यग्दर्शन कब होगा?

पू. लालचंदभाई: हाँ सम्यक्त्व (कब होगा) और सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता उसकी राह देखा करता है।

मुमुक्षु: इसलिए पर्याय ऊपर ही गया ना?

पू. लालचंदभाई: पर्याय के ऊपर ही गया ना?

मुमुक्षु: इसलिए वह तो पर्याय का और पर्याय का ही लक्ष रहा।

पू. लालचंदभाई: वहीं का वहीं रहा। दूसरा कुछ नहीं।

मुमुक्षु: घोलन किया करता है ध्रुव का और नजर...

पू. लालचंदभाई: (घोलन किया करता है) ध्रुव का और ध्यान करता है पर्याय का।

मुमुक्षु: और ख्याल में आता है और (उसको) ऐसा लगता है कि मैं तो बहुत करता हूँ। बहुत अच्छा आपने (बताया)। इसलिए सम्यग्दर्शन की इस प्रकार कब प्राप्त करूँ, कब पाऊँ, कब पाऊँ?

पू. लालचंदभाई: वह झूठा है। वह तो पर्याय की ही भावना हुई। द्रव्य की भावना छूट गई। धारावाही भावना से उठे तब वह पक्ष में आता है। और पक्ष में आता है उसे पता चलता है, बाकी स्वयं को ही, दूसरे को खबर नहीं पड़ती। और उसको भरोसा हो जाता है कि अब थोड़े समय में सम्यग्दर्शन होगा। वह पक्ष भी अपूर्व है, अनंतकाल से उसको नहीं आया है।

मुमुक्षु: हाँ, वह तो वहाँ आया हो तो तो आगे पूरा हो जाये।

पू. लालचंदभाई: तो-तो सम्यग्दर्शन हो गया होता न?

मुमुक्षु: पूरा हो गया, वहाँ से पीछे थोड़े ही आना है?

पू. लालचंदभाई: पक्ष में नहीं आया।

मुमुक्षु: एक दूसरा सामान्य प्रश्न है कि यह भट्टी जैसा दु:ख लगता है तो आत्मार्थी का काम होता है या ऐसे उत्साह के द्वारा काम होता है?

पू. लालचंदभाई: काम तो उत्साह द्वारा ही होता। भट्टी का तो इसलिए उन्होंने कहा है कि कहीं वह संतुष्ट ना हो जाये, कहीं उसे अहम् ना हो जाये, कहीं 'आहा!' ना हो जाये। और मानो करोड़ रुपए आ गये हों अथवा तो कोई मानपत्र दे दे तो वहाँ भी उसे शुभभाव में मिठास आ जाये, तो वह नहीं आनी चाहिये, इसीलिए भट्टी कहा है। परंतु काम तो अस्ति से होता है। वह (भट्टी जैसा दु:ख) उसमें नहीं है। भट्टी जैसा किसे लगता है? आत्मा को तो लगता नहीं क्योंकि आत्मा में तो भट्टी नहीं है, राग नहीं है। उससे भिन्न है आत्मा।

बाकी ऐसा है जीतू, कथन की पद्धति के प्रकार में, समष्टिगत है यह। गुरुदेव की वाणी है ना? वह समष्टिगत (सर्वांगी) है। कोई कहीं पर रुकता हो, कोई कहीं पर रुकता हो। अनेक प्रकार की बातें तो उसमें आती हैं। इसलिए बातें तो बहुत आती हों परंतु अस्ति के ऊपर तुम्हें जाना चाहिये। नास्ति का ज्ञान कर लेना कि दु:ख ही है। जिस भाव से तीर्थंकर कर्म की प्रकृति का बंध हो वह शुभ राग भी भट्टी जैसा है, दु:ख ही है हों, उसमें कहीं सुख की बूँद भी नहीं है। उसमें कहाँ सुख है, राग में? वो तो वही का वही हुआ। इसलिए वह उपयुक्त है, जो कहते हैं।

मुमुक्षु: परंतु उठाने के लिए तो उसे उत्साह?

पू. लालचंदभाई: अस्ति का, अस्ति का, अस्ति का, अस्ति का, अस्ति का। नास्ति का ज्ञान भले होता जाये, नास्ति का ज्ञान करता जाये ऐसा नहीं कहते। भले ही नास्ति का ज्ञान होता जाये परंतु जोर अस्ति पर आता जाता है, अस्ति पर आता जाता है। उसमें किसी समय पक्ष में आ जाता है, पक्षातिक्रांत बाद में हो जाता है ऐसा है।

मुमुक्षु: नास्ति के ज्ञान का जोर नहीं करना?

पू. लालचंदभाई: नास्ति का ज्ञान होता जाता है और अस्ति का जोर बढ़ता जाता है।

मुमुक्षुः अस्ति का जोर बढ़ता जाये, ठीक है! उसमें उसका काम होता है।

पू. लालचंदभाई: नास्ति का ज्ञान तो सहज होता है ना! क्योंकि व्यवहार का निषेध करता है उसका अर्थ उसका ज्ञान हो गया। पर्याय मेरे में नहीं है, वह तो उस पर्याय का ज्ञान हो गया ना? उस पर्याय का स्वीकार हो गया उसे, है पर्याय पर मेरे में नहीं है, परंतु मेरे में नहीं है। पर्याय की अस्ति, परंतु मेरे में नास्ति, ऐसी मेरी अस्ति, ऐसा मैं हूँ। समझ गये?

मुमुक्षुः ऐसा हूँ, बहुत सुंदर!

(जीतूभाई ऑडियो टेप करते हैं)

मुमुक्षुः विषय ऐसा था ना, कि उसमें पता न चले कि (बात) ऐसी है। बहुत सुंदर!

पू. लालचंदभाई: विषय, बहुत अच्छा है!

मुमुक्षुः प्रतिभास का जो इसमें आपने खास विषय लिया ...

पू. लालचंदभाई: और नागरभाई और उमेदभाई दोनों खूब मेहनत करते हैं, मुझे पता है। समझ गये? अर्थात् उन दोनों का लक्ष रखकर तेरे से बात करता हूँ। दूसरा तू भी इसमें इतना गहरा रस ले रहा है यह आज मुझे पता चला। इसलिए विशेषकर तुम तीनों को मेरी नजर के सामने रखकर यह बात कहता हूँ।

यह ही करने जैसा है। आहाहा! प्रतिभास को कौन उड़ाता है? दर्पण के सामने चेहरा, चेहरा जानना बंद होवे न, तो मुझे दर्पण जानने में आए - ऐसा नहीं है। चेहरा जानने में आता रहेगा और चेहरा जानने में नहीं आता परंतु दर्पण जानने में आ जाएगा, ऐसा काल आएगा तेरा ले, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु: चेहरा जानने में नहीं आएगा, तो-तो दर्पण ही नहीं होगा।

पू. लालचंदभाई: दर्पण ही न होवे।

मुमुक्षु: इसलिए चेहरा तो जानने में आनेवाला ही है।

पू. लालचंदभाई: जानने में आनेवाला ही है।

मुमुक्षु: लक्ष छूट जानेवाला है।

पू. लालचंदभाई: हाँ!

मुमुक्षु: दर्पण जानने में आएगा, तब तो वह सच्चा होगा।

पू. लालचंदभाई: बस! चेहरे के ऊपर से लक्ष छूट जाता है। यह ज्ञेय है और वह ज्ञेयाकार है। ज्ञेय और ज्ञेयाकार दोनों का लक्ष छूटता है और ज्ञानाकार में चला जाता है, ऐसा।

मुमुक्षु: यह दृष्टांत बहुत अच्छा! प्रतिभास और लक्ष की बहुत अच्छी बात, और फिर आधार भी सभी मिल गए।

पू. लालचंदभाई: आधार दिए ना तुझे? सारे आधार दिए। जयसेन आचार्य का मूल का आधार दिया, किस प्रकार तुम आहार को जानते हो? कि **दर्पण में आये हुये प्रतिबिंब के समान** (इन्द्रियज्ञान ज्ञान नहीं, बोल १०८)। अर्थात् डायरेक्ट के ऊपर लक्ष नहीं हमारा। और आहार को नहीं जानते ऐसा भी नहीं कहते। वह किस प्रकार जानने में आता है कि **दर्पण में आये हुए प्रतिबिंब के समान** ऐसा

कि यहाँ उसका प्रतिभास होता है। तो मैं तो ज्ञान को जानता हूँ, तो ज्ञान को जानने पर ज्ञान में जो प्रतिभास हुआ वह भी जानने में आ गया। आहार जानने में आ गया, परंतु आहार का लक्ष नहीं है।

मुमुक्षु: इसलिए ज्ञान, वह ही जानने में आने पर (आहार जानने में आ गया)। बहुत अच्छा!

पू. लालचंदभाई: आहाहा! ऐसा है। आहार को जाने तो ज्ञान रहता नहीं।

मुमुक्षु: तो वह विशेषता सीधे तौर पर इन्द्रियज्ञान में गई?

पू. लालचंदभाई: हाँ! इन्द्रियज्ञान, उसमें कुछ माल नहीं है। अब तो द्रव्यलिंगी से पूछो जानने में क्या आता है? तो कहे आहार जानने में आता है। फिर पानी पीता हो तो क्या जानने में आता है? कि पानी जानने में आता है, ऐसा ही कहता है वो। द्रव्यलिंगी मुनि ऐसा ही कहता है। विश्वास करना हो तो कर लेना।

मुमुक्षु: हाँ भाई! ये तो इन्द्रियज्ञान के विषय में तो चारों तरफ से यह ही आनेवाला है ना? मूल विषय पूरा...

पू. लालचंदभाई: उसमें कुछ है नहीं। ऐसा तो अनंतबार किया, भाई!

मुमुक्षु: एक मुझे कभी-कभी खेद ऐसा रहा करता है कि हमारा पूरा दिन प्रवृत्ति का होता है, सुबह से लेकर रात (तक)। तो उसमें यह घोलन की धारा अथवा तो भेदज्ञान (चले), उसके लिए क्या करना? प्रवृत्ति तो अभी उदय ऐसा है कि कैसेट का (cassette) काम गुरुदेव का अभी तो भाई! दिन-प्रतिदिन इतना बढ़ता जा रहा है कि हम पहुँच ही नहीं पाते।

पू. लालचंदभाई: ऐसा? इतना बढ़ रहा है?

मुमुक्षु: लोग अब इसके ऊपर ही आ गये हैं क्योंकि ये सब वातावरण के हिसाब से कोई ऐसा कहता है और कोई ऐसा कहता है।

पू. लालचंदभाई: बढ़ता है। बढ़ता जाता है। बढ़ता जाता है। और यह प्रामाणिक (authority) है। गुरुदेव की टेप है वह प्रामाणिक अर्थात् वह बने तो अच्छा है।

मुमुक्षु: इसलिए हमारी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। तो उसमें हमारा मनुष्य देह तो चला जा रहा है ना? काल तो निकल रहा है।

पू. लालचंदभाई: देख जीतू, तुझे आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होवे ऐसी एक छोटी पुस्तक तुझे बताता हूँ। वह तेरे लिए लाइफ-टाइम (आजीवन) के लिए है, लाइफ-टाइम (lifetime).

मुमुक्षु: बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!

पू. लालचंदभाई: **ज्ञायकभाव** पुस्तक छपी है। (समयसार की) छठवीं गाथा पर।

मुमुक्षु: हाँ... छठवीं गाथा!

पू. लालचंदभाई: तुम्हारे यहाँ होगी? नहीं तो मैं दूँ? एक **ज्ञायकभाव** पुस्तक, छठवीं गाथा। परंतु क्या उसके अंदर माल भरा है, बहुत माल भरा है! तेरा काम हो जाएगा। एक, एक वह पुस्तक और दूसरी **अध्यात्म प्रवचन रत्नत्रय,** उसमें भी माल है। बस ये दो पुस्तक लाइफ-टाइम (आजीवन) अभ्यास करने जैसी हैं। उसमें (अध्यात्म प्रवचन रत्नत्रय में) पहले में ध्येय की बात की है (समयसार की) ३२० (गाथा) में, फिर (प्रवचनसार की) ११४ (गाथा) में ध्यान कैसे करना आत्मा का, वह ध्यान की

विधि कही है। पर्यायार्थिक चक्षु बंद कर और द्रव्यार्थिक ..., यह ध्यान की विधि है, और उसका फल ध्याता, (कलश टीका) २७१ (कलश), ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय - अभेद। ज्ञाता भी यहाँ, ज्ञेय भी यहाँ, ज्ञान भी यहाँ, वहाँ नहीं कुछ। मैं ज्ञाता और छह द्रव्य मेरे ज्ञेय - भ्रांति है। व्यवहार ना लिखकर भ्रांति लिखा है।

मुमुक्षु: भ्रांति लिखा है कलश-टीकाकार ने।

पू. लालचंदभाई: इसलिए ये तेरह प्रवचन उसमें हैं। वे पढ़ना और एक यह ज्ञायक भाव पुस्तक। ज्ञायक भाव तो जाते ही शुरू कर देना।

मुमुक्षु: हाँ जी, हाँ जी, अभी आपके पास से लेकर जाऊँगा, याद से।

पू. लालचंदभाई: हाँ, मैं दे देता हूँ, यहीं है।

मुमुक्षु: वह है। घर पर है परंतु आपके पास से ... क्योंकि ऐसा मुझे रहा करता है। बहुत अच्छा!

पू. लालचंदभाई: बहुत ऊँचा है और इतने बड़े-बड़े अक्षर हैं, बड़े अक्षर हैं। इसलिए पढ़ने में अच्छा रहेगा। परंतु एक पेज पढ़ना, वह समझ में न आए तो दूसरी बार, तीसरी बार पढ़ना। बस! ये दो पुस्तक लाइफ-टाइम (के लिए) बहुत हैं। पूरा ४१५ गाथा का निचोड़ है यह, छठवीं गाथा, छठवीं का लेख। और गुरुदेव के प्रवचन अक्षर-अक्षर हैं।

मुमुक्षु: हाँ! और गुरुदेव को खूब प्रसन्नता आती है उसमें, छठवीं गाथा के (प्रवचन) बहुत सुंदर। परंतु आज आपने टाइम निकालकर मुझे बहुत समय दिया।

पू. लालचंदभाई: चर्चा एकदम बंद है, बिल्कुल। यह तुम्हारे लिए ही और तुम तीनों जो जिनवाणी का रक्षण करते हो, इसीलिए भाव आया वरना चर्चा पूरी तरह से बंद है। गुरुदेव का सारा साहित्य बाहर आ गया है, उसे पढ़ो बस।

मुमुक्षु: उसका दुरुपयोग किया है।

पू. लालचंदभाई: दुरुपयोग ही है ना? परप्रकाशक लक्षण है अर्थात् मैं पर को तो जानता ही हूँ, (ऐसा माने तो) उसको निषेध नहीं आता।

मुमुक्षु: उसमें ओत-प्रोत हो गया है।

पू. लालचंदभाई: उसे स्वभाव माना, "पर को जानता हूँ" यह उसने स्वभाव माना है, इसलिए निषेध आ ही नहीं सकता, मेरा कहने का आशय यह है। स्वपरप्रकाशक है और केवली लोकालोक को जानते हैं और मैं मेरे क्षयोपशम द्वारा स्व-पर को जानता हूँ, निषेध आता ही नहीं है।

मुमुक्षु: निषेध ही नहीं आता, स्वभाव मानता है, निषेध कहाँ से आए?

पू. लालचंदभाई: स्वभाव माने उसे निषेध कहाँ से आए? इसीलिए अंदर नहीं जाता, उपयोग आता नहीं (अंदर), बाहर में भटकता है, व्यवृत्त नहीं होता पर से।

मुमुक्षु: इसलिए परप्रकाशकपने को स्वभाव माने उसमें फिर निषेध कहाँ से आए?

पू. लालचंदभाई: स्वभाव माना है ना पर (प्रकाशक)? यह पँखा जानने में आता है - स्पष्ट ज्ञात होता है, यह शास्त्र ज्ञात होता है, यह टेप रिकॉर्डर (tape recorder) ज्ञात होता है, उसका निषेध कहाँ से हो?

मुमुक्षु: स्वभाव का निषेध कहाँ? विभाव का निषेध करना सीखे।

पू. लालचंदभाई: हाँ! राग का निषेध आता है परंतु जानने का निषेध नहीं आता, मुश्किल यह है, इसीलिए बहुत कम प्राप्त करते हैं। वह यह पोइंट (point) जरा सूक्ष्म है, यह पोइंट ही सूक्ष्म है। सभी को समझ में आ जाए ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु: कि इस (परप्रकाशक) स्वभाव के लोभ में, स्वभाव मानकर उससे (बहिर्मुखता से) हटे कहाँ से?

पू. लालचंदभाई: उपयोग बहिर्मुख रहा करता है, स्वभाव मानता है इसलिए बहिर्मुख रहता है। राग (को) विभाव माना है इसलिए उससे तो भेदज्ञान कर सकता है। इसको, पर को जानना स्वभाव माना है।

मुमुक्षु: जैसे वह भगवान की भक्ति से लाभ मानता है वह वहाँ से खिसक नहीं सकता।

पू. लालचंदभाई: हाँ ऐसे ही, (खिसक) नहीं सकता।

मुमुक्षु: इस प्रकार यह पर को स्वभाव मानता है, इसलिए पर को जानने को स्वभाव मानता है तो पर से खिसक नहीं सकता, उसमें ही रहता है।

पू. लालचंदभाई: उपयोग बाहर ही रहता है। ये ऐसा नहीं कहा गुरुदेव ने कि असल में तो उपयोग पर को जानता नहीं तो पर को जानने की बात कहाँ रही? इन पुरुष ने तो कहा है ना?

मुमुक्षु: स्पष्ट! बहुत अच्छा। जानता ही नहीं फिर उपयोग रखना कहाँ रहा?

पू. लालचंदभाई: कहाँ रहा? जानता ही नहीं। अपने को ही जानता है। समय-समय आबालगोपाल सभी, अपने को ही जानते हैं, पर को जानते ही नहीं। परंतु यह जो है ना? यह बहुत कठिन बात है, निषेध आना बहुत कठिन बात है। (जिसको) स्वभाव मानता है उसका निषेध कहाँ से आए? क्योंकि स्वपरप्रकाशक तो फिर सूत्र है न?

मुमुक्षु: हाँ सूत्र है। स्वपरप्रकाशक (तो) स्वभाव है।

पू. लालचंदभाई: स्वभाव है, स्वपरप्रकाशक स्वभाव है, विभाव नहीं है।

मुमुक्षु: स्वभाव का निषेध किया जा सकता है? अर्थात् ऐसा आया कि स्वभाव का निषेध किया जाये? स्वभाव-स्वभाव करता है।

पू. लालचंदभाई: इसीलिए वह सूक्ष्म पोइंट है।

मुमुक्षु: बहुत अच्छा है। निहाल कर दिया गुरुदेव ने।

पू. लालचंदभाई: गुरुदेव सब कुछ कह गए हैं, सब कह गए हैं।

मुमुक्षु: बहुत! उसमें से मूल विषय को निकाल लेना, बस।

पू. लालचंदभाई: बस! निकाल लेने की कीमत है। उसमें बहुत माल मिलेगा तुझे। वरना उनकी (गुरुदेव की) आदत ऐसी है कि निश्चय की बात कहते-कहते व्यवहार को लपेट-लपेटकर निश्चय की बात कहेंगे इसका तुम ध्यान रखना। वे निश्चय की बात को व्यवहार से लपेट देंगे और कह देंगे। अर्थात् किसी का ही ध्यान खिंचेगा, बाकी तो वो लिपटा हुआ व्यवहार हुआ अर्थात् व्यवहार ही आगे आएगा।

स्वपरप्रकाशक है, स्वपरप्रकाशक है, ऐसा कहा करेंगे। फिर कहेंगे - जाननहार है, जाननहार

है तो उसमें पर को जानता है ऐसा आया ना? कि ना, नहीं आया। साथ ही पूछते हैं ये। सब कुछ कह गए (हैं) परंतु निश्चय के वाक्य पर ध्यान खिंचता नहीं है लोगों का, इसीलिए प्राप्त नहीं होता आत्मा, उसका कारण यह है।

मुमुक्षु: गुरुदेव पिछले (अंत के कुछ) वर्षों में लेते थे न? किसी ने पूछा कि कितने प्रकार के जीव हैं? दो प्रकार के जीव हैं? कि हाँ! दो प्रकार के जीव हैं। वह पर्यायवाला जीव अलग। उत्पाद-व्यय बगैर का जीव है उसे ही जिनवर-देव जीव कहते हैं।

पू. लालचंदभाई: जीव कहते हैं, सत्य बात है!

मुमुक्षु: ऐसे दो जीव? तो कहते हैं कि हाँ, दो जीव। वह यह ही जीव है।

पू. लालचंदभाई: एक व्यवहार जीव, (एक) निश्चय जीव। असली बात है यह! जिनवरदेव इसे ही जीव कहते हैं। शब्द हैं (कि) जिनवरदेव इसे ही जीव कहते हैं। और तीर्थंकर भगवान, चरम शरीरी वे ध्रुव का ध्यान करते हैं, उत्पाद-व्यय से रहित ध्रुव का ध्यान करते हैं। परमात्मप्रकाश में गाथा है यह।

मुमुक्षु: है हाँ। और गुरुदेव उसका बहुत ही आधार लेते थे इतने वर्षों में तो, उत्पाद-व्यय के बगैर जिनवर-देव उसे ही जीव कहते हैं।

पू. लालचंदभाई: तीर्थंकर भगवान जब दीक्षा लेते हैं, जंगल में जाते हैं, तब ध्रुव का ध्यान करते हैं, चरम शरीरी। अब परमात्मा जिसका ध्यान करते हैं उसका ध्यान तू कर न! किसका आधार लेना है तुझे?

मुमुक्षु: हाँ, हाँ! बस! सही है! परमात्मा जिसका आधार लेते हैं, उसका तू आधार ले।

पू. लालचंदभाई: हाँ। 'जिसका मैं ध्यान करता हूँ उसका ध्यान तू कर न!' आहाहा! ज्ञानी ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु: गुरुदेव को उसकी बहुत प्रसन्नता रहती कि तू परमात्मा ही है, निःसंदेह हो, होनेवाला है यह बात नहीं है।

पू. लालचंदभाई: नहीं, नहीं, नहीं, नहीं, परमात्मा ही हो। यह अभी एक गुरुदेव का लंबा पैराग्राफ आया है ना? उसमें वे तीन वाक्य लिए हैं।

मैं परमात्मा हूँ ऐसा नक्की कर।

मैं परमात्मा हूँ ऐसा निर्णय कर।

तीसरा वाक्य:- **मैं परमात्मा हूँ ऐसा अनुभव कर।**

ऐसे तीन वाक्य हैं।

मुमुक्षु: वह योगसार का नौवाँ प्रवचन है, उसकी गाथा है। उसमें लिया है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! योगसार का, उसमें वो प्रिंटिंग बड़े अक्षरों में है, बड़ा पैराग्राफ है उसमें ये तीन वाक्य हैं।

मुमुक्षु: यह गुरुदेव का खास (वाक्य है) और बहिनश्री जो सुबह के ५:३० बजे बजवातीं थीं न ऊपर, वह यह।

पू. लालचंदभाई: हाँ! उसमें यह आता था, यह ही। अर्थात् मैं परमात्मा हूँ अर्थात् ज्ञायकभाव ही

हूँ, पामर नहीं हूँ मैं। अर्थात् द्रव्य पर दृष्टि आ गई।

मुमुक्षु: संसार की गंध नहीं, पर्याय की गंध नहीं। कुछ (नहीं), अकेला ज्ञायक भाव ही हो। गजब!

पू. लालचंदभाई: बहुत कह गए हैं, सब कुछ कह गए हैं।

मुमुक्षु: हाँ, गुरुदेव कहते थे। जब उल्टी हुई न, गुरुदेव को दिवाली के एक महीने पहले जब प्रवचन बंद हो गए न? उससे पहले जो बड़ा डॉक्टर बॉम्बे से आया था, वह गया और गुरुदेव प्रवचन पढ़ने बैठे और उल्टी हुई, एकदम उठकर जाना पड़ा। तब गुरुदेव ने ऐसा कहा कि अब शरीर की स्थिति में अंतर पड़ गया है। फिर गुरुदेव ने ऐसा कहा कि कहना अब कुछ (भी) बाकी ही नहीं है। जितनी मूल वस्तु है, मूल बात है, वह सभी कह दी गई है। अर्थात् गुरुदेव को ऐसा रहता था कि सब कुछ मूलभूत द्रव्यदृष्टि का, सब कुछ आ गया है। अब शरीर के पलटने की स्थिति है परंतु कहने की जो बात थी (वह आ गई है)।

पू. लालचंदभाई: यह प्रवचन-नवनीत में सब कुछ बहुत सुंदर आता है। पहले भाग में बहुत सुंदर है, बहुत अच्छा है।

मुमुक्षु: और लोगों को स्वाध्याय में भी बहुत आसान पड़ता है। बाद में गुरुदेव के वे खास-खास प्रवचन हो गए हैं।

पू. लालचंदभाई: हाँ खास।

मुमुक्षु: खास-खास प्रवचन अलग, अलग, अलग जो हो गए।

पू. लालचंदभाई: बाबूभाई यहाँ आये। बाबूभाई से मैंने कहा कि भाई यह कैसेट मुझे उतरवानी है चार महीनों की। तो कहा कि भले। ... नहीं, मैंने लिखा, लिखा था।

मुमुक्षु: आए थे मेरे पास तुरंत ही, लेने के लिए।

पू. लालचंदभाई: फिर तुम्हारे पास आये फिर तुमने कहा कि एक स्पेयर पार्ट (spare part) नहीं है और कल भावनगर जाकर मँगा लूँगा। तो कहें न, आज के आज (अभी के अभी) मँगा दो और आज रात को उतरवा दो, कल मुझे जाना है। तो जीतू ने तात्कालिक मँगवाई और उतरवाई और दूसरे दिन कैसेट भरकर आया यह रेक (rack), यह बॉक्स (box) भरकर आया। क्या कहते हो? तो कहें, हाँ, ऐसी ही (घटना) घटी।

मुमुक्षु: और गुरुदेव वे प्रवचन देते थे, (उनका) लक्ष बहुत था कि ये खास-खास प्रवचन हैं अर्थात् इनकी पुस्तक बाहर आयेंगी।

पू. लालचंदभाई: बहुत-बहुत! ठीक और इस तरह बाहर आईं भी और धीमे-धीमे बाहर आयेंगी।

मुमुक्षु: ऐसा तो उन खास-खास प्रवचनों के लिये एक बार मैंने माँग रखी। अंदर में, बाहर में नहीं। कि साहेब ये क्लास लीं हैं, वो तो ठीक है, यह खास-खास! रूटीन (routine) के चलते आते हैं (उससे अलग)।

पू. लालचंदभाई: वो नहीं, परंतु खास-खास मूल गाथायें ले लो।

मुमुक्षु: खास खास प्रवचन! ऐसे वे दोपहर को बैठे थे, तब बात की। परंतु बाद में, तब गुरुदेव तो फिर ऐसा समझते थे कि कोई रामजीभाई जैसे (प्रमुख) व्यक्ति के मुख से कुछ बात आये, तब तो वह शोभा देवे न?

पू. लालचंदभाई: हाँ! वो तो सही बात है। दिमाग में तो उन्होंने रखी (तुम्हारी बात)।

मुमुक्षु: गुरुदेव को ख्याल आता है। क्योंकि मुझे वह लक्ष था। शिविर में बिचारे कहाँ-कहाँ से लोग आते हैं और हमारी जो रूटीन (routine) की गाथायें चलती हों और वे लोग आयें तो गुरुदेव का इसप्रकार का घोलन पलट जाए।

पू. लालचंदभाई: वे बारह गाथायें, अभी बारह गाथाओं की बारह कैसेट मैंने सुनीं अभी। वे शिविर की ही हैं, ३२० गाथा, शिविर में। अच्छी तरह से सुन ली हैं। वो शांताबेन (घिया ने) यहाँ भेंट की थीं।

मुमुक्षु: कितनी गईं? ८६ सेट तो हो गये, दे दिये गये।

पू. लालचंदभाई: कितने?

मुमुक्षु: ८६ (सेट)।

पू. लालचंदभाई: ८६ सेट दे दिये गये!

मुमुक्षु: बारह प्रवचन के ८६ (सेट) दे दिये गये। हीराभाई आत्मधर्म में घोषणा करते हैं न?

पू. लालचंदभाई: आधी कीमत में।

मुमुक्षु: हाँ, आधे से भी कम १०० रूपये में। २४० (रूपये) होते थे, उसके बदले १०० रूपये में मंडलों को दी। वह ८६ सेट तो हो गये और अभी भी चालू हैं। और शांताबेन घिया ने जो पाँच दिन (छूट के) रखे थे उसमें कुछ ३६-३७ सेट उसमें गये थे। और बाकी पूरा पेमेंट (full payment) बीच-बीच में आता है, क्योंकि आत्मधर्म में आ गया है न, इसलिये सभी को ख्याल आ गया है कि भले ही हमें (अभी) नहीं मिले। हमें डिस्काउंट (discount) की कहाँ जरूरत है? सभी को कहीं डिस्काउंट की जरूरत नहीं होती। लेकिन कुछ विषय रखे तो लोग और भी ले जाते हैं, ये अलग। इसलिये इस ३२० गाथा में भाई विशेषता ऐसी है, क्योंकि मैंने ३२० गाथा को बहुत बार सुना, परंतु इसमें गुरुदेव आधार ही इतने देते हैं।

पू. लालचंदभाई: आधार दिये हैं।

मुमुक्षु: इतने आधार! यहाँ ऐसा कहा है और वहाँ ऐसा कहा है। रोज वो एक कड़ी वाँचें और कहें देखो! यहाँ आधार दिया है। निचोड़ दे दिया है।

पू. लालचंदभाई: बहुत अच्छा! बहुत अच्छा! बारह गाथा में...., बारह कैसेट सुनी हैं।

मुमुक्षु: यहाँ दिवाली के दिन पर सुनते हैं।

पू. लालचंदभाई: यहाँ एक पड़ी है। मंदिर में मैंने सुनी और फिर चंदूभाई को भिजवाई। चंदूभाई डॉक्टर ने सुनी और फिर मेरे यहाँ आ गई है। बाद में भिजवा दूँगा। यह कैसेट बहुत अच्छी है।

मुमुक्षु: लोग बहुत पसंद करते हैं, हिन्दी समाज में (भी) और सभी। बहुत भाई! वे महापुरुष

भगवान के पास से आये हैं अर्थात्, कुंदकुंदाचार्य वहाँ से आये, अमृतचंद्राचार्य, ये सभी जो-जो भगवान के पास से आये हैं वे सभी...

पू. लालचंदभाई: साक्षात् गुरुदेव ने कुंदकुंद भगवान को देखा न! ... गुरुदेव ने वहाँ, महाविदेहक्षेत्र में, उस वक्त वहाँ थे, गुरुदेव वहाँ थे।

मुमुक्षु: गुरुदेव को अमृतचंद्राचार्य का ख्याल नहीं आया नहीं तो अधिक प्रसन्नता होती।

पू. लालचंदभाई: ठीक! अब तुझे ये एक बात पूछूँ? अनुभव का विषय और अनुभव कैसे होवे? - उसकी विधि। बस! वह दो बातें सीखने जैसी हैं। बाकी आधी-अधूरी बातों में जाओ मत। इन दो बातों का निर्णय करो। और स्वाधीनपने निर्णय होगा, उसमें (दूसरे) किसी का (कुछ) काम नहीं आता। क्योंकि आत्मा 'स्वयंभू' लिखा है, स्वाधीन, स्वयंभू अर्थात् स्वाधीन है। सिर्फ पढ़ते रहना और सुनते रहना, ऐसे-के-ऐसे जिंदगी चली जाये (तो) किस काम की?

मुमुक्षु: स्वाधीनपने निर्णय करना वह ही करने जैसा है।

पू. लालचंदभाई: निर्णय के ऊपर वजन अधिक देने जैसा है। निर्णय के बाद अनुभव होगा, यथार्थ निर्णय हों! सोगानी जी कहते हैं निर्णय, परंतु यथार्थ निर्णय। और जीतू, जैसा आत्मा अनुभव में आता है ना, ऐसा ही निर्णय होता है। अर्थात् उसमें कोई अंतर नहीं है।

मुमुक्षु: अच्छा! निर्णय और अनुभव में कुछ अंतर नहीं है?

पू. लालचंदभाई: एक आनंद नहीं। एक आनंद रहित और एक आनंद सहित, इतना ही फर्क है। जीव में कोई फर्क नहीं है। जीव उसने देखा न जो, वैसा ही अनुभव में आता है। उसका नाम निर्णय।

मुमुक्षु: अर्थात् उसे ही निर्णय कहा जाता है, सच्चा।

पू. लालचंदभाई: उसे ही निर्णय सच्चा कहते हैं! और उसे बाद में पता चले कि ओहो! यह जो निर्णय मैंने किया था वही अनुभव में आज, ऐसा ही आत्मा आया, ऐसा। उसका नाम निर्णय। निर्णय की कीमत बहुत है। निर्णय के बाद तो कोलकरार (पक्का) हो जाता है। निर्णय के बाद तो कोलकरार होता है, अनुभव होता ही है।

मुमुक्षु: जैसे भगवान को जैसा जानने में आता है वैसा ही वाणी में आता है, ऐसा कहा जाता है। ऐसे इसमें जैसा निर्णय होता है, सच्चा।

पू. लालचंदभाई: वैसा ही अनुभव होता है।

मुमुक्षु: वैसा ही अनुभव होता है। दोनों में कुछ अंतर नहीं है, तत्त्व-निर्णय और अनुभव। (बस!) एक आनंद की अनुभूति (का अंतर) है।

पू. लालचंदभाई: पंचाध्यायी में उसका आधार आ गया है अच्छा। बहन को, शांताबेन को भी था और चंपाबेन को भी था। दोनों का ख्याल है हमें, खबर मिली थी यहाँ। शांताबेन को तीन महीने लगे थे लगभग, निर्णय के बाद।

मुमुक्षु: इसके बाद चौथे गुणस्थान में?

पू. लालचंदभाई: गुणस्थान तो पहला (ही रहता है), निर्णय में।

मुमुक्षु: नहीं! नहीं! फिर निर्णय होकर अनुभव जब होता है.... तीन महीने हुये थे बहन को। निर्णय होकर अनुभव हो, फिर अनुभव होने के बाद में बाकी की ज़िंदगी जीते हैं, तब तक, कुछ उसमें (अंतर होता है)?

पू. लालचंदभाई: वो नहीं। वो तो किसी को अनुभव जल्दी होवे और किसी को देर से होवे, श्रद्धा में फर्क नहीं पड़ता है। श्रद्धा हुई तो हुई, बस! उसमें फर्क नहीं होता। श्रद्धा के लिये तो उसको विचारना नहीं है। फिर तो ज्ञान के पक्ष से विचार करके अंदर में कैसे उपयोग लगे, इस जाति की प्रेक्टिस (practice), चारित्र की प्रेक्टिस होती है बाद में। श्रद्धा के लिये प्रेक्टिस नहीं है।

मुमुक्षु: फिर निर्विकल्पता विशेष-विशेष आने लगती है?

पू. लालचंदभाई: आने लगती है और ये तो वो जो श्रद्धा का विषय लिया है, वह ही उर्ध्वरूप से उसे जानने में आया करता है तो उपयोग जल्दी आता है। और यदि भेद-प्रभेद में उपयोग चला जाये तो देर होती है।

मुमुक्षु: और इसप्रकार छठवें गुणस्थानवाला विकल्प में हो और चौथे गुणस्थानवाला निर्विकल्पदशा में हो, तो उन दोनों में विशेषता?

पू. लालचंदभाई: तो छठवें वाले की निर्जरा अधिक। निर्जरा अधिक, आनंद अधिक, उसको तीन कषाय का अभाव है। वह सविकल्प की उत्कृष्ट स्थिति है। हाँ! है। भले विकल्प है परंतु विकल्प, विकल्प में है। तीन कषाय का अभाव तो वर्तता है न!

मुमुक्षु: परंतु निर्विकल्प में तो गोला अलग है इसप्रकार से...

पू. लालचंदभाई: भले ही वह अलग हो, परंतु अबुद्धिपूर्वक की कषायें हैं अभी यहाँ पर। स्थिरता कम है।

मुमुक्षु: भले! कषाय है लेकिन।

पू. लालचंदभाई: नहीं! नहीं! नहीं! छठवें (वाले) के साथ लागू ही नहीं (पड़ता), कुछ नहीं लगता। चौथे (वाले) की छठवें के साथ बिल्कुल तुलना नहीं की जा सकती। छठवाँ गुणस्थान अर्थात् क्या? भले ही सविकल्प हो। उसकी बात पूरी अलग है। छठवें गुणस्थान के साथ तुलना नहीं की जा सकती।

मुमुक्षु: विकल्पवाला है परंतु उसे कषाय की जो तीन ...

पू. लालचंदभाई: हाँ! स्वभाव का आश्रय है उतना कषाय का अभाव हो गया। उग्र आश्रय वर्त रहा है, छठवें में भी। सातवें के योग्य अभी आश्रय नहीं है, परंतु छठवें के योग्य तो आश्रय है ही। चौथे और छठवें में बड़ा अंतर है। वह लड़ाई में भले खड़ा हो चौथे वाला। समझ गये? और वह विकल्प में है परंतु उन (दोनों में) बहुत अंतर है।

मुमुक्षु: चौथेवाला निर्विकल्प होने पर भी छठवेंवाले की बात पूरी अलग है।

पू. लालचंदभाई: छठवें की पूरी बात (अलग है)। वह मुनिराज तो साक्षात् सिद्ध जैसे हैं। उनकी क्या बात करनी? वे तो झूलते हैं अंदर में, बस। विकल्प की भी उपेक्षा वर्तती है। ज्ञान और वैराग्य की शक्ति जबरदस्त है। विकल्प के प्रति उदास हैं वे, बिल्कुल। यहाँ तक है कि विकल्प है लेकिन विकल्प

से पराङ्गमुख हैं वे। आनंद आता है उससे भी पराङ्गमुख हैं।

मुमुक्षु: आनंद से भी पराङ्गमुख हैं?

पू. लालचंदभाई: पराङ्गमुख हैं, पर्याय में आनंद आया न? उससे पराङ्गमुख हैं। वह अंदर की अलौकिक अलग बात है।

मुमुक्षु: अर्थात् उस पराङ्गमुखपने में तो क्या लक्ष की अपेक्षा से गिनना न?

पू. लालचंदभाई: हाँ! लक्ष की अपेक्षा से। उपयोग है बाहर भले, उपयोग बाहर है परंतु उसका जोर अंदर है। वह बात ही कोई अपूर्व है। चलते-फिरते सिद्ध कहे हैं। मुनिराज अर्थात् क्या? आहाहा!

मुमुक्षु: चलते-फिरते सिद्ध!

पू. लालचंदभाई: वो तो अभी चौथा काल नहीं है, नहीं तो यहीं मुनिराज केवलज्ञान ले लें, यहीं।

मुमुक्षु: हाँ! सही है। कुंदकुंदाचार्य सभी थे छठवें गुणस्थान में सातवाँ-छठवाँ, सातवाँ-छठवाँ। आनंद के वेदन की अपेक्षा से, कदाचित् चौथे (गुणस्थान वाले) को निर्विकल्प (अवस्था) के समय पूरता विशेष (आनंद होता होगा)?

पू. लालचंदभाई: आनंद कम! कम! कम!

मुमुक्षु: आनंद भी कम?

पू. लालचंदभाई: कम! कम! उसके साथ इसकी तुलना की ही नहीं जा सकती।

मुमुक्षु: तुलना हो ही नहीं सकती आनंद की।

पू. लालचंदभाई: नहीं बिल्कुल। उनका (मुनिराज का) आनंद कहाँ, तीन कषाय के अभावपूर्वक वीतरागता! और इनका (चौथे गुणस्थान में) एक कषाय के अभावपूर्वक वीतरागता। बड़ा अंतर है। वीतरागता ही उस आनंद का कारण है। वीतरागता उस आनंद का कारण है। जितनी वीतरागता अधिक उतना आनंद अधिक। यहाँ (चौथे गुणस्थान में) एक अनंतानुबंधी कषाय गई है उतना आनंद है। वहाँ तीन कषाय का अभाव, उसकी बात... अपूर्व है, मुनिराज के साथ कोई तुलना नहीं हो सकती। चौथे गुणस्थानवाला नहीं, बल्कि पाँचवें गुणस्थानवाले तीर्थंकर (हों) तो (भी नहीं क्योंकि) उन्हें गृहस्थ अवस्था में पाँचवाँ आ जाता है। और कहाँ मुनिराज! भले वह तीर्थंकर का द्रव्य हो, उनके (मुनिराज के) साथ तुलना नहीं है। मुनिराज की तो पूरी बात अलग है।

मुमुक्षु: चलते-फिरते सिद्ध अवस्था। दशा ही पूरी पलट गई।

पू. लालचंदभाई: हाँ, दशा अलग ही प्रकार की है। चलो अब यहाँ पूरा हुआ।

ॐ